Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

प्रेमचन्द के कहानियों की रचना प्रक्रिया

डॉ. बद्री दत्त मिश्र

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, फीरोज़ गांधी कालेज, रायबरेली, उत्तर प्रदेश।

सारांश- प्रेमचंद को निरंतर आदर्श धरोहर के रूप में याद करना, दरअसल स्वयं को असली हिंदुस्तान से जोड़ना है। जो अब भी दबा कुचला है । प्रेमचंद का साहित्य ,विषमता पूर्ण इस समाज व्यवस्था के प्रति आक्रोश ही नहीं पैदा करता ,बल्कि तो उसे बदलने के लिए एक तीव्र छटपटाहट और बेचैनी से भी हमें भर देता है। यही कारण है की मनुष्य से गहरी मोहब्बत करने वाले लेखकों को प्रेमचंद बराबर याद रहते हैं ।

मुख्य शब्द- प्रेमचंद, आदर्श, धरोहर, साहित्य, मनुष्य, सामाजिकता, किसान, मजदूर, महाजन, भिखारी, पंडित, पुरोहित, हरिजन, जमीदार, पत्रकार, उद्योगपति।

किसी भी कलाकार का अपनी कला में यथार्थ से साक्षात्कार कितना प्रमाणित है, यह तय करने के लिए पहले यह देखना चाहिए कि वह अपने परिवेश का संकटों के प्रति, समस्याओं के प्रति क्या रुख अपनाता है । यथार्थ के ही नाम पर मानव जीवन की जैविक यथातथ्यता को प्रकृति वादियो ने अपनी कला में उतारने की कोशिश की तो उसके क्या परिणाम निकले, यह सर्वविदित है। यथार्थ के नाम पर व्यक्तिके चरित्र के सूत्र केवल उसकी मनोग्रंथियों में खोजते रह जाने वाले मनोविश्लेषण वादी कहां पहुंचे यह भी किसी से छिपा नहीं। इन दोनों की अतियों से बचने के लिए कुछ लेखक मध्यमार्गी बने। यथार्थवाद के संदर्भ में यह बहुत फलदाई ना हुआ, क्योंकि जैसा कि जॉर्ज लुकाच ने लिखा है "यथार्थवाद की वस्तुपरकता तथा मिथ्या व्यक्तिपरकता के बीच का रास्ता नहीं है। वह हमारे समय की भूल भुलैया में बिना किसी नक्शे की भटकने वाले लोगों द्वारा गलत रूप में प्रस्तुत किए गए प्रश्नों के फलस्वरूप उत्पन्न सभी प्रकार के मिथ्या असमंजसों के विरुद्ध सत्य तथा सही समाधान तक पहुंचने वाला एक तीसरा रास्ता है ।[1] "कला के यथार्थ के बारे में प्रेमचंद ने लिखा" कला दिखती तो यथार्थ है , पर यथार्थ होती नहीं । उसकी खूबी यह है कि वह यथार्थ मालूम हो" ।[2]

इस कथन का वास्तविक आशय समझने में जरा भी चूक हो जाए तो दो तरफा संकट उपस्थित हो सकता है। एक तरफ कला वादियों को अपने प्रच्छन्न यथार्थवाद के विरोध के लिए तर्क पाने में प्रेमचंद का उपयुक्त कथन उपयोगी प्रतीत हो सकता है, और दूसरी तरफ यथार्थ वादियों को संदेह हो सकता है कि कला का यथार्थ ना होते हुए भी यथार्थ मालूम होना, कहीं मिथ्या यथार्थवाद तो नहीं है। गौर करने लायक चीज वस्तुत: यहां यह है कि प्रेमचंद कला में यथार्थ को यथार्थता के अर्थ में स्थान देने से इंकार कर रहे हैं । 'यथार्थ ना होते हुए भी' का अर्थ है हुबहू ,यथावत थे ना होते हुए भी और' यथार्थ मालूम हो' का अर्थ है, मनुष्य और उसके जीवन तथ्यों की ओर ध्यान आकृष्ट करें । दूसरे शब्दों में प्रेमचंद यथार्थवाद को अपने आप में कला का कोई लक्ष्य नहीं मानते , केवल उसे एक रास्ता मानते हैं ।कला से होते हुए जीवन तक पहुंचने का

। कला और जीवन , दोनों यदि एकदम एक होते तो इस रास्ते की जरूरत ही क्या । यह सच है कि प्रेमचंद अपने प्रारंभिक कहानियों में भावुकता पूर्ण चित्रण ज्यादा करते हैं , और उस समय के ठोस राजनीतिक संदर्भों का उपयोग प्राय: नहीं कर पाते या बहुत कम कर पाते हैं। ऐसा करते हुए वे शायद यथार्थ को उस तरह से चित्रित नहीं करते , जिसकी अपेक्षा किसी भी रचनाकार से हो सकती है । लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं की भावुकता से ऊपर कहानी में ठोस राजनीतिक संदर्भों का इस्तेमाल करने की कला प्रेमचंद को कभी आई ही नहीं ।"lu 1913 esa tekuk ds uoEcj vad esa Nih va/ksjs"[3] शीर्षक कहानी में अनुभव को जिस तीखे पन के साथ चित्रित किया गया है उससे स्पष्ट है कि आगे चलकर प्रेमचंद अपने समाज को देखने की कैसी खरी दृष्टि पा लेते हैं। धर्म जैसी भावना की वस्तु हो या राजनीति जैसी व्यवस्था की वस्तु दोनो के भ्रष्टाचारी रूप की इस कहानी में वे बड़ी निर्ममता से प्रहार करते हैं । यह कहानी उस अंधेर की कहानी है, जो धार्मिक विश्वासों के आंकड़े गांव को अपना शिकार बनाता है यह कहानी उस अंधेरे की कहानी है जिसमें जकड़े हुए गांव के लोग उसे उबरने का कोई रास्ता नहीं प्राप्त करते। यह कहानी उस अंधेरे की भी कहानी है , जिस को बनाए रखने में गांव के मुखिया और पुलिस को स्वार्थ पूर्ण सांठगांठ और सहयोग होता रहता है। प्रेमचंद का यही यथार्थ बोध अंतत: आगे चलकर उनके ठोस राजनीतिक संदर्भ और उनके रचना संसार में अनुभूति परकता पर हावी होने वाला इतिवृत्त बनकर नहीं बल्कि अनुभूत की पकड़ देने वाली चेतना बनकर आ गई और वह इतिहास को आधार बनाकर शतरंज के खिलाड़ी और अपने समय के राजनीतिक आंदोलनों को आधार बनाकर 'आहुति 'जुलूस ,और तावान जैसी कहानियां लिख पाते हैं । और इसी आत्मविश्वास के बूते वे अपनी कला को 'स्वराज्य का संदेश' घर-घर पहुंचाने का माध्यम भी बना पाते हैं ।

अपने समय के राजनीतिक संदर्भों को कहानियों के परिवेश का अंग बनाते समय प्रेमचंद उनके साम्राज्यवादी और राष्ट्रवादी दोनों स्वरूपों पर निगाह रखते हैं और उनके आपसी विरोध को ही नहीं , बल्कि उनके स्वयं के अंतर्विरोध को भी देखने में चूकते नहीं। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में,औपनिवेशिक शोषण में लगे साम्राज्यवाद की चाल ही यह हमेशा से रही थी, कि भारतीय कृषक समाज उसके सीधे विरोध में न आने पाए। साम्राज्यवादी व्यवस्था देसी जमींदारों , तालुकेदारों को बीच में रखते हुए , उन्हें के माध्यम से शोषण करती थी ताकि किसानों के मन में यदि खीझ और असंतोष जागे भी तो वह उन्हीं पर उतरे और साम्राज्यवाद के लिए चुनौती न बनने पाए। प्रेमचंद साम्राज्यवाद की चाल से हमारा प्रत्यक्ष परिचय कराने के लिए कई कहानियां 'बलिदान' ,रियासत का दीवान,आदि में अपने जमीदार पात्रों को खुद अपनी व्यथा बयान करने का मौका देते हैं । सन 1918 में छपी कहानी 'बलिदान ' के जमीदार ओंकारनाथ की मजबूरी वे खुद उन्हीं की जुबानी सुनाते हैं "तुम समझते होगे कि हम यह रुपए लेकर अपने घर में रख लेते हैं और चैन की बंशी बजाते हैं , लेकिन हमारे ऊपर जो गुजरती है उसे हम ही जानते हैं । कहीं यह चंदा, कहीं वह इनाम । इनके मारे कचूमर निकल जाता है। हमें तो परमात्मा ने इसी लिए बनाया है कि 1 रुपया किसी को सता कर ले और दूसरे को रो-रो कर दें ।"[4]

यह एक पतन शील परजीवी वर्गके रूप में अनुभव की गई जमीनदार समाज की मजबूरी है । साम्राज्यवाद का अंतर्विरोध यह था ही कि यह इस वर्ग को अपने लिए इस्तेमाल तो कर रहा था , लेकिन उसे यह पता नहीं चल पा रहा था कि इस वर्ग की मजबूरी का यह एहसास भीतर ही भीतर साम्राज्यवाद के विरुद्ध क्या शक्ल अख्तियार कर सकता है । जमीदार वर्ग की मजबूरी को यदि हम गोदान के पृष्ठों पर अभिव्यक्त, कृषक वर्ग की मजबूरी "(हमारा जन्म क्या इसीलिए हुआ है कि हम अपना रक्त बहाएं है और दूसरों का घर भरें) "।[5]

से मिलाकर देखें तो पता चलेगा कि प्रेमचंद साम्राज्यवाद के इस युग में जमींदार और किसान के संबंध को मात्र शोषक और शोषित ग्रुप में दिखाकर नहीं रह जाना चाहते बल्कि यह भी दिखाना चाहते हैं कि दोनों की मजबूरी का एक समान स्तर भी है । जहां दोनों का शत्रु एक ही है और वह है उपनिवेशवादी साम्राज्यवाद । जमींदारों में सामंती संस्कारों का अवशेष उन्हें मुख्य शत्रु के खिलाफ किसानों के साथ मिलकर मोर्चा बनाने से रोक रहे थे । यह अंधा सामंतवाद था जो जमींदारों को किसानों की

मजबूरी के साथ जोड़कर अपनी मजबूरी को देखने का मौका नहीं देता था। यही अंधा सामंतवाद प्रेमचंद की रचना दृष्टि का निशाना बनता है।

साम्राज्यवाद के विरुद्ध चल रहे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेमचंद जब अपनी कहानियों का विषय बनाते हैं तो उनकी वही कहानियां उत्कृष्ट कोटि की बन जाती हैं जो आंदोलन के बाह्य दृश्य का आंखों देखा हाल भर नहीं होती ,बल्कि जो राष्ट्रीय आंदोलन के बारे में प्रेमचंद के सुविचारित सोच का पता देती हैं । इस सिलसिले में यदि हम 'लाग डांट 'और 'आहुति 'की तुलना करके देखें तो यह बात और अधिक स्पष्ट होगी । सन 1921 में छपी कहानी लाग डांट , उन दिनों गांधी के नेतृत्व में चल रहे आंदोलन का दृश्य आलेख प्रतीत होती है । लाग डांट के चौधरी को सुनिए तो लगता है स्वयं गांधी बोल रहे हैं । "अपने घर का बना हुआ गाढ़ पहनो ,अदालतों को त्यागो ,नक्शे बाजी छोड़ो, अपने लड़कों को धर्म-कर्म सिखाओ, मेल से रहो बस यही स्वराज है ।"[6]

स्वराज की इस परिकल्पना में गांधी की सोच को ज्यों का त्यों उतार दिया गया है। स्वराज के गांधीवादी आदर्श को प्रस्तुत मात्र करने वाले प्रेमचंद यहां दिखते हैं , उस पर विचार करने वाले प्रेमचंद यहां नहीं दिखते। पर यही प्रेमचंद जब आहुति लिखते हैं , तो स्वराज की परिकल्पना पर आलोचनात्मक ढंग से सोच विचार करते मिलते हैं । वे राष्ट्रीय आंदोलन की सार्थकता को मात्र इतने में नहीं देखते कि विदेशी हुकूमत को देश से खदेड़ कर निश्चिंत हो जाया जाए । शोषण के विदेशी चरित्र को ही देखकर रह जाने वालों से आगे बढ़कर प्रेमचंद शोषण के स्वदेशी चरित्र की भी पड़ताल करते हैं । तो वे राष्ट्रीय आंदोलन की समीक्षा कितनी दूर दृष्टि के साथ करते हैं , इसका पता "आहुति की रुकमणी के इस कथन से चलता है "जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिए हुए हैं ,उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सर पर चढ़ाएगी कि वे विदेशी नहीं देशी हैं । कम से कम मेरे लिए तो स्वराज का यह अर्थ नहीं है कि जान की जगह गोविंद बैठ जाएं । मैं समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हूं जहां कम से कम विषमता को आश्रय मिल सके।"[7] आहुति का प्रकाशन 1930 में हुआ था लेकिन उसके रुक्मणी का यह कथन आज सन 2022 में भी हमारे भारतीय समाज को क्या एक प्रश्न की तरह नहीं घेरे हुए हैं ।

प्रेमचंद की कहानियों का मुख्य आधार उनकी वर्णनात्मकता में छुपा हुआ है। प्रेमचंद की कहानियों का पात्र जगत चाहे कितना भी वृद्ध पूर्ण हो लेकिन पात्रों और उनके जीवन की घटनाओं से पाठकों को परिचित कराने का प्रेमचंद का अंदाज प्राय: ,dlk यानी वर्णनात्मक ही रहता है लेकिन यह वर्णनात्मक ता प्रेमचंद की कहानियों के कथा तत्व को कैसी रोशनी को रूप में फैलतीहै , जिसमें मानव संबंधों की सामाजिक आर्थिक संरचना उभर कर सामने आ जाती है ।और इन संबंधों में झटका खाता मन भी अपने भावों की झलक का मौका पा जाता है। प्रेमचंद ने वर्णनकर्ता के रूप में लेखक की सीमा बताते हुए कहा है कि "वह चरित्रों के मनोभावों की व्याख्या करने नहीं बैठता, केवल उसकी तरफ इशारा कर देता है " जो लोग इस सीमा से बाहर मनोभावों की व्याख्या की मांग कहानी से करते हैं, उन्हें लग सकता है कि प्रेमचंद की कहानियों में वर्णनात्मक ,मनस्थिति के चित्रण में कोई योग नहीं देती । लेकिन यह गलत है । वे इसी वर्णनात्मक शैली में ही मानसिक स्थितियों को स्पष्ट रूप से सामने लाते हैं ।

उनके इस वर्णन में व्यंग और विचार के टांके भी लगते चलते हैं। वर्णनकर्ता के रूप में प्रेमचंद अपनी कहानियों में खुद की उपस्थिति को हर जगह अनिवार्य नहीं समझते । वे चाहते हैं की इस कार्य में उनके पात्र सहयोग दें। उन्हें भरोसा है कि उनके पात्र जीवन और जगत के हैं इसलिए जीवन और जगत पर विचार करने और उनकी विसंगतियों पर व्यंग करने का सीधा अधिकार उन्हें ही प्राप्त होना चाहिए । नशा ,बड़े भाई साहब ,पूस की रात, ईदगाह ,ठाकुर का कुआं ,और कफन आदि कहानियों में जहां-जहां पात्र अपने इस अधिकार का सदुपयोग करते हैं, व्यंग और विचार अपनी वर्णनात्मकता के बावजूद , असरदार तरीके से अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति प्राप्त करते है। पूस की रात में हल्कू जबरा की ठंडी पीट चलाते हुए कहता

है" कल से मत आना मेरे साथ नहीं तो ठंडे हो जाओगे । ये खेती का मजा है । और ऐसे ऐसे भागमान पड़े हैं , जिनके पास जाड़ा जाए तो गर्मी से घबराकर भाग जाए । मोटे मोटे गद्दे लिहाफ कंबल ।मजाल है कि जाड़े का गुजर बसर हो जाए। तकदीर भी खूब है , मजदूरी हम करें मजा लूटे । " हल्कू के व्यंग की जद में यहां विषमता को बढ़ावा देने वाली व्यवस्थाएं और हलकू की विवशता है ।और यही प्रश्न आगे चलकर गोदान के औपन्यासिक रूप में किसान द्वारा पूछा गया ।" क्या हमारा जन्म इसलिए हुआ है कि हम अपना रक्त बनाएं और दूसरों का घर भरें ।" इसी तरह ईदगाह कहानी में बालक मोहसिन, चौधरी कायम अली के ताकत के बारे में सहज व्यंग्य करने का मौका पाता है तो उसके मुंह से निकली बात की "चौधरी साहब के काबू में सौ जिन्नात हैं । " सरीखी बातों महीन मार देखने को मिलती है । ईदगाह के रास्ते में पुलिस लाइन पड़ती है।उसे देखकर पुलिसिया चरित्र के भ्रष्टाचारी स्वरूप का ध्यान होना स्वाभाविक है । यहां भी प्रेमचंद खुद कुछ नहीं कहते। वे पुलिस वालों की पहरेदारी का राज भी मोहसिन को ही खोलने देते हैं। अजी हजरत ,यही चोरी करवाते हैं ।शहर के चोर डाकू इन से मिले रहते हैं । रात को यह लोग चोरों से कहते हैं, चोरी करो और आप दूसरे मोहल्ले में जाकर जागते रहो ,जागते रहो पुकारते हैं ।मोहसिन के प्रमाणिक स्रोत उसके मामू हैं ,जो एक थाने में कांस्टेबल है। तनख्वाह पाते हैं ₹20 लेकिन घर भेजते हैं ₹50 और पूछने पर हंस कर कहते हैं बेटा अल्लाह देता है।"[8]

व्यंग को संवेदनात्मक प्रखरता देने के लिए प्रेमचंद अक्सर उसे करुणोद्रेक बनाकर ही प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि पूस की रात और कफन में भी देखा जा सकता है ।कफन में घीसू ने मृत बुधिया के कफन के नाम पर ₹5 की अच्छी रकम महज 1 घंटे में जमा कर ली और अब सुनिए उसका यह वार्तालाप। " कैसा बुरा रिवाज है कि जिसके जीते जी तन ढकने का चीथडा भी न था , उसे मरने पर नया कफन चाहिए। कफन लहास के साथ जल ही तो जाना है ।और क्या रखा रहता है ? यही पांच रुपए पहले मिलते, तो कुछ दवा दारू कर लेते ।"[9] इस वार्तालाप में व्यंग्य की करुणा तो स्पष्ट है , लेकिन उसका यहां विलीनीकरण नहीं होता ।बल्कि शोक की संवेदना और गहरी होती है ।और इससे उपजा आक्रोश सिर्फ एक रिवाज को ही नही, बल्कि पूरी व्यवस्था को ही अपने परिवृत में ले आता है।

प्रेमचंद को निरंतर आदर्श धरोहर के रूप में याद करना ,दरअसल स्वयं को असली हिंदुस्तान से जोड़ना है। जो अब भी दबा कुचला है ।प्रेमचंद का साहित्य ,विषमता पूर्ण इस समाज व्यवस्था के प्रति आक्रोश ही नहीं पैदा करता ,बल्कि तो उसे बदलने के लिए एक तीव्र छटपटाहट और बेचैनी से भी हमें भर देता है। यही कारण है की मनुष्य से गहरी मोहब्बत करने वाले लेखकों को प्रेमचंद बराबर याद रहते हैं ।प्रेमचंद्र ने विपुल कथा लेखन करने के बावजूद अपने को कभी दोहराया नही । यह दोहराव , वस्तु या भाव से लेकर शिल्प तक में , हम कहीं भी प्रेमचंद में नहीं पाते । उन्होंने हर रचना को एक नई भाव भंगिमा और नई जमीन पर रचा । उनके पात्र टाइप्ड नहीं है । वे हर रचना में एक अलग आकार और प्रकार ग्रहण करते हैं । उन्होंने सभी को चाहे वह किसान ,मजदूर ,महाजन ,भिखारी ,पंडित ,पुरोहित ,हरिजन ,जमीदार ,पत्रकार ,उद्योगपति और ,तत्कालीन समाज के तमाम प्रतिनिधियों को अपने कथा साहित्य में प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद हमें आत्म समीक्षा के लिए बार-बार प्रेरित करते हैं । वे जानते हैं कि सामाजिक जीवन के स्वाभाविक विकास के लिए यह जरूरी है कि हम उन रोगों को , जो हमें बाधित करते हैं, उसे समझें । प्रेमचंद के होने का मतलब ही होता है कि हम सामाजिकता के नव व्यवहार को समझें और उसके अनुरूप नए समाज के निर्माण के लिए प्रवृत्त हो। प्रेमचंद की उपस्थिति का यही मतलब है और यही उनके होने का तात्पर्य भी ।

टिप्पणियाँ :

1. "स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म जार्ज लुकाक्ष पृष्ट 6
2. "मानसरोवर भाग-1 प्राक्कथन"
3. सन 1913 में' जमाना ' के नवंबर अंक में छपी कहानी अंधेरे

4. बलिदान
5. गोदान
6. लाग डांट
7. आहुति
8. ईदगाह
9. कफन